पेरिस
जनवरी ६, २००७

सन्देश संख्या ११२

इंग्लैण्ड में रहनेवाली फ्रांसीसी मीराबाई को पत्र

ना–वापसी की हद तक जाकर भी लौट आना अच्छा है; दैनिक कार्यों के सम्पादन हेतु विचारों के उपलब्ध रहने के बावजूद उनसे मुक्त हो जाना अच्छा है; परम पवित्र चैतन्य शरीर को स्पर्श करे और उससे मौलिक रूपान्तरण एवं पुनर्जन्म हो जाय, फिर भी संबंधों की असारता में रहना अच्छा है; अकेला नहीं, एकाकी होना अच्छा है; सभी पुस्तकों की जानकारी के बावजूद सत्य के मार्ग पर होना अच्छा है; अकमण्य नहीं, ''मैं'' का प्रयत्न शैथिल्य की अवस्था में होना अच्छा है और मान्यताओं एवं आरोपणों से मुक्त रहकर सजगता के परमानन्द में होना अच्छा है । प्रज्ञा उत्तर नहीं खोजती बल्कि उसमें समस्त मूर्खतापूर्ण प्रश्न समाप्त हो जाते हैं ।

एक व्यक्तित्व के साथ पहचान हो या कि ''सभी'' के साथ, वह क्षुद्र ''मैं'' और उसका विस्तार ही है । व्यावहारिक कारणों से पहचान हेतु आवश्यक संदर्भ–संकेतों को छोड़कर अन्य सभी पहचानों से मुक्त होना क्या सम्भव है ? विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में शामिल होना अच्छा है किन्तु रिट्रीट में शामिल होना उससे भी अच्छा है । रिट्रीट में भाग लेना मत छोड़ो और न ही दूसरों को अपने प्रेममय अस्तित्व से वंचित होने दो ।

कई वर्षों पूर्व संयोगवश, शिवेन्दु मुम्बई के भीड़–भाड़ वाले आम लोगों के रहने वाले इलाके में निसर्गदत्त से मिला था और उनके साथ ''बीड़ी'' पीने का भी प्रयास किया था किन्तु उसमें सफलता नहीं मिली । निसर्गदत्त जंगल में खिले पुष्प की तरह अत्यन्त आकषक थे । वे अपनी स्थानीय भाषा में स्वतःस्फूर्त्त रूप से बोलते थे (कई वर्षों तक उस क्षेत्र में कार्य करने के कारण शिवेन्दु वह भाषा समझता था) । उसमें कोई शब्दाडम्बर या प्रभावकारी मुहावरों का प्रयोग नहीं होता था । सुननेवालों को उनकी बातें बिजली के झटके की तरह झकझोर देती थीं । किन्तु उनके शरीर में घटित होने वाली प्रक्रिया की कोई भी झलक, अहंकारी ''भक्त'' समूह द्वारा उनकी बातों का किए गए अनुवाद में बिल्कुल नहीं मिलती।

कई वर्षों बाद, शिवेन्दु को उनके एक ऐसे शिष्य से मिलने का मौका प्राप्त हुआ जो मुम्बई के एक अभिजात्य इलाके में स्थित ऊँची अट्टालिका में केवल एक प्लास्टिक पुष्प की तरह था । वह पेशेवर वकील की तरह पूछ–ताछ एवं तर्क–वितर्क की चालाकी एवं चालबाजी से, ''अवधारणाओं'' एवं ''निष्कर्षों'' के माध्यम से ''ईश्वर'' को बेचता था तथा इसी से कुछ पागल ''आध्यात्मिक–पीपासुओं'' के मध्य काफी लोकप्रिय था ।

यदि हमलोग स्वयं स्वप्न देख रहे हैं तो उसे केवल देखना ही पर्याप्त होगा अथवा पूर्ण जागृत होना होगा ताकि चित्तवृत्ति में संचित हो रहे समस्त प्रकार के जटिल अवशेषों एवं अवसादों से युक्त सकारात्मक या नकारात्मक मानसिक पंजीकरणों के संबंध में कोई भी अपूर्ण अनुभव न हो । दूसरे अपना जीवन स्वप्नवत जी रहे हैं – ऐसा चिन्ता करने एवं उन पर दया–भाव दर्शाने की आवश्यकता नहीं है । ऐसा करना, और कुछ नहीं, बल्कि ''मैं'' तुमसे अधिक पवित्र हूँ, का तुष्टीकारक अनुभव प्राप्त करना है । बहिर्जगत का द्वैत मान्य है किन्तु अन्तर्जगत का अद्वैत ही सत्य है क्योंकि वहाँ द्रष्टा ही दृश्य है, अनुभवकर्त्ता ही अनुभाव्य है, नियन्त्रणकर्त्ता ही नियन्त्रित है, समस्या–समाधानकर्त्ता ही समस्या है । अहंकार–शून्यता ही शाश्वत–सम्पूर्णता है । 'वह' उन्हीं के पास आता है जिनके पास 'वह' आता है । किन्तु 'वह' उनके पास भी आता है जो क्रिया करते हैं । इसलिए कृपाकर बिना कुछ चाहते हुए, प्रज्ञा की अवस्था में अनवरत क्रिया करते रहो । हालाँकि 'वह' तुम्हारे अस्तित्व में पहले से ही है, 'उसे' कहीं से आना नहीं है । सिर्फ चाहना, इस तथ्य के प्रति जागरण से रोकता है ।

सत्य के मार्ग पर रहो । पुस्तकों की जानकारी या विचारों में मत फँसो और न ही आनन्दमयी माँ, रामकृष्ण, रमणमहर्षि या श्री निसर्गदत्त के कथनों का अनुसरणकर्त्ता बनो । प्रेम का वर्णन मत करो क्योंकि वर्णन विचार है, प्रेम नहीं। पहले से ही घटित हो रहे अनाम अस्तित्व के उत्सव में सहभागी मात्र बनो, कर्त्ता नहीं । अनाम अस्तित्व का यह उत्सव सतत् जारी है, किन्तु विभेदकारी चित्तवृत्ति में मोह से मुक्ति रूपी सुधार सम्भव प्रतीत नहीं होता और इसलिए इस चित्तवृत्ति द्वारा रचित माया–मोह के छद्म आवरण के कारण इस उत्सव का पता ही नहीं चलता । प्रज्ञा या प्रेम या जीवन ''तुम्हें'' कुछ भी नहीं कहता । वह तुम्हारे अस्तित्व में तभी कार्य करता है, जब ''तुम'' नहीं होता ।

।। जय उत्सव ।।